

UnivColl International Multidisciplinary Research Journal

Volume 2 | Issue 9, September 2026, pp. 1-8

ISSN (Online): 3108-1460

Homepage: <https://univcolljournal.com>



Title: डॉ. भीमराव आंबेडकर का गाँवों के प्रति दृष्टिकोण: एक अध्ययन
Author(s): कुसुम¹, डॉ. अरुण कुमार², डॉ. संजय कुमार अग्रवाल³
Affiliation(s): ¹शोधकर्ता, सिंघानिया विश्वविद्यालय झुंझुनू राजस्थान
²असिस्टेंट प्रोफेसर, सिंघानिया विश्वविद्यालय झुंझुनू राजस्थान
³असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड
DOI: <https://doi.org/10.65919/uimrj.2026.v2i9001>
History: Received: 14 July 2026, Accepted: 08 September 2026, Published: 30 September 2026
Citation: कुसुम, कुमार, अ., अग्रवाल, सं. कु. (2026). डॉ. भीमराव आंबेडकर का गाँवों के प्रति दृष्टिकोण: एक अध्ययन. *UnivColl International Multidisciplinary Research Journal*, 2(9). 1-8,
<https://doi.org/10.65919/uimrj.2026.v2i9001>
Copyright: © 2026 The Author(s)
Licensing:  [Open access under CC BY-NC 4.0](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/)
Conflict of Interest: The author(s) declare no conflict of interest.
Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.
Corresponding Author: कुसुम ✉
Published By: [UnivColl Publications](https://univcolljournal.com)

डॉ. भीमराव आंबेडकर का गाँवों के प्रति दृष्टिकोण: एक अध्ययन

कुसुम

शोधकर्ता, सिंघानिया विश्वविद्यालय झुंझुनू राजस्थान

डॉ. अरुण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, सिंघानिया विश्वविद्यालय झुंझुनू राजस्थान

डॉ. संजय कुमार अग्रवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र में डॉ. भीमराव आंबेडकर के भारतीय गाँवों के प्रति दृष्टिकोण का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया गया है। आंबेडकर ने ग्रामीण समाज को केवल भारतीय संस्कृति और परंपराओं का केंद्र मानने के बजाय उसमें व्याप्त जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, आर्थिक शोषण और सामाजिक असमानताओं की आलोचनात्मक विवेचना की। उनके अनुसार, परंपरागत ग्रामीण व्यवस्था में प्रभावशाली जातियों का वर्चस्व वंचित समुदायों की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा में बाधक था। उन्होंने ग्रामीण समाज के पुनर्गठन के लिए जाति-व्यवस्था के उन्मूलन, भूमि सुधार, औद्योगीकरण, शिक्षा के प्रसार तथा संवैधानिक अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन पर बल दिया। उनका मानना था कि वास्तविक लोकतंत्र केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व से नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता से स्थापित हो सकता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि आंबेडकर का ग्रामीण दृष्टिकोण सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा समावेशी विकास और शोषणमुक्त समाज की स्थापना पर आधारित था।

मुख्य शब्द: डॉ. भीमराव आंबेडकर, ग्रामीण समाज, जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता, सामाजिक न्याय, भूमि सुधार, ग्रामीण विकास।

भूमिका

ग्रामीण क्षेत्र को भारत के लंबे इतिहास और समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं के साथ जोड़ा जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में जाति और लिंग के आधार पर असमानता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसके बावजूद, ये संस्थाएँ सामाजिक और राजनीतिक नियंत्रण के लिए बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। ये छोटे ग्रामीण समुदाय के सामाजिक और राजनीतिक ढांचे में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसा कि मेटकाफ़ का मानना है कि, “एक गाँव गणतंत्र में सबसे छोटी इकाई माना जाता है, जिनके पास व्यावहारिक रूप से वे सभी चीज़ें हैं जिनकी उन्हें इच्छा होती है”। प्राचीन से लेकर आधुनिक समय तक होने वाले कई क्रांतियों और साम्राज्यों के पतन के बावजूद ग्रामीण समाज में कोई बदलाव नहीं देखने को नहीं मिलता है। भारतीय लोगों के अस्तित्व और उनकी स्वतंत्रता व आत्म-निर्णय के अधिकार को गाँव के समूहों पर ही निर्भर माना जाता है। ये ग्रामीण क्षेत्र एक साथ मिलकर आगे चलकर “पंचायतों” में बदल जाती है। जो स्थानीय विवादों को सुलझाती थीं और न्याय करती थीं।

ब्रिटिश काल के समय स्थानीय स्व-शासन संस्थाएँ मूल रूप से ‘गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट, 1919’ के तहत बनाई गई थीं। जिसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1922 में पंजाब में पंचायत एक्ट, मद्रास में विलेज पंचायत एक्ट, बंगाल में स्व-शासन एक्ट, और 1925 में सेंट्रल प्रोविसेस इन बरार और उत्तर प्रदेश में ऐसे कानून पास किये गये जो कि ग्राम पंचायत से सम्बन्धित था। ‘गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट, 1935’ ने चुने हुए प्रशासन और क्षेत्रीय स्वायत्तता की व्यवस्था की। संविधान के मसौदे में पंचायत राज का कोई ज़िक्र नहीं था। संविधान का अनुच्छेद 40 इस बहस के जवाब में तैयार किया गया था कि क्या गाँव “स्थानीयता का गढ़, अज्ञानता, संकीर्ण सोच और सांप्रदायिकता का अड्डा” (डॉ. बी.आर. अंबेडकर) हैं, या फिर “भारतीय आज़ादी की शुरुआत निचले स्तर से होनी चाहिए” ताकि यह पक्का किया जा सके कि “हर गाँव आत्मनिर्भर हो और अपने कामकाज खुद संभालने में सक्षम हो”। इन कानूनों को फिर से मज़बूत और असरदार बनाने के लिए, भारत सरकार ने 73वाँ संशोधन अधिनियम पारित किया। जिससे लोगों, खासकर कमज़ोर वर्गों, महिलाओं और भूमिहीन मज़दूरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए, इस कानून के तहत गांवों को ज़्यादा आर्थिक मदद देने और विकास से जुड़ी अलग-अलग योजनाएँ बनाने की उनकी क्षमता को बढ़ाने में सहायता की ज़रूरत थी। इस अधिनियम की धारा 11 के तहत पंचायत को 29 तरह के काम सौंपे जाने हैं। लेकिन भारत में ज़्यादातर पंचायतों ने अभी तक ऐसा नहीं किया है।

महाभारत काल से ही ग्रामीण इलाकों में पंचायत व्यवस्था अधिकार और नियंत्रण का एक ज़रिया रही है। संस्कृत शब्द “पंचायत” का अर्थ है पाँच ग्रामीणों का समूह, जिन्हें कभी-कभी “पंच” भी कहा जाता है। पारंपरिक रूप से, पंचायत के काम गाँव में आपसी मेल-जोल बनाए रखना। इसके साथ साथ अलग-अलग समूहों के बीच झगड़ों को सुलझाना और ऐसे फैसले लेना रहा है। जिनसे जाति या वर्ग से ऊपर उठकर पूरे समुदाय का भला हो। लेकिन बाद में, मध्यकालीन और आधुनिक दौर में, शासकों—खासकर अंग्रेज़ों और मुगलों—ने ज़मीन के इस्तेमाल के बदले ज़मींदारों से “फ़िगाअन” (fiagaan) नाम का टैक्स वसूलने के लिए भी इनका इस्तेमाल किया। शहरीकरण, औद्योगीकरण और ज़मीन से जुड़े नए नियमों की वजह से गाँव का सामाजिक ढाँचा पूरी तरह बदल गया।

डॉ. आंबेडकर के सामाजिक चिंतन की पृष्ठभूमि

बी. आर. अंबेडकर एक बेहतरीन विचारक और समाज सुधारक थे। उन्हें अपने करियर की शुरुआत में ही अछूतों की दयनीय स्थिति का पता चल गया था। उन्होंने अपना पूरा जीवन उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने में लगा दिया (बख्शी, 2009)। अंबेडकर की राजनीतिक विचारधारा ने आम लोगों के संघर्षों को दिशा देने और खास तौर पर पश्चिमी राजनीतिक सोच की समस्या पर नए सिरे से विचार करने में मदद की। आधुनिक समय में दलित संघर्ष के बढ़ने के साथ, अंबेडकर एक प्रमुख राजनीतिक विचारक बन गए।

अंबेडकर के लिए आज़ादी, समानता और सम्मान सामाजिक न्याय से गहराई से जुड़े हुए थे। उनके सामाजिक न्याय के विचार में जाति-व्यवस्था को खत्म करना शामिल था, क्योंकि यह व्यवस्था लाखों लोगों को बराबरी का दर्जा नहीं देती थी; यह सिर्फ़ राजनीतिक न्याय या आर्थिक सुधार की बात नहीं थी। उनका मानना था कि: अगर समाज असमानता पर आधारित है, तो उसे न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह सामाजिक अत्याचार है। भारत कभी भी सच्चा लोकतंत्र नहीं बन पाएगा। सामाजिक मूल्यों में कमी और धार्मिक मूल्यों पर अत्यधिक निर्भरता के कारण मानवीय व्यवस्था में उत्पीड़न, अन्याय और अपमान आम बात हो गई थी, जिससे मानवता अलग-थलग पड़ गई। हिंदू समाज इसका एक बेहतरीन उदाहरण है। अंबेडकर के लिए

दलितों के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सशक्तिकरण के साथ-साथ सामाजिक बदलाव भी महत्वपूर्ण थे। भारत में समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में एक और बाधा लोगों का बंटवारा है। अंबेडकर का "जाति का विनाश" (एनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट) सिद्धांत जाति व्यवस्था पर एक प्रसिद्ध विचार है। अंततः, यह राजनीतिक आज़ादी और लोगों की सोच में बदलाव की बात है, जिससे सामाजिक अलगाव हमेशा के लिए खत्म हो जाएगा। उन्होंने अपने लेख "हिंदू सोशल ऑर्डर: इट्स ऐसेशियल प्रिंसिपल्स" में आज़ादी को दो श्रेणियों में बांटा है: "नागरिक आज़ादी" और "राजनीतिक आज़ादी"। अंबेडकर ने पहली श्रेणी, यानी "नागरिक आज़ादी" को तीन बुनियादी आज़ादियों के तौर पर परिभाषित किया: कहीं भी आने-जाने की आज़ादी, बोलने की आज़ादी (जिसमें सोचने, पढ़ने और चर्चा करने की आज़ादी शामिल है), और काम करने की आज़ादी।

अंबेडकर का हिंदू समाज के बारे में नज़रिया इन बातों पर आधारित था: वर्गों के बीच सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का असमान और पदानुक्रमित (ऊँच-नीच वाला) बंटवारा; किसी खास वर्ग के भीतर तय अधिकार; और सामाजिक-आर्थिक प्रतिबंधों के साथ-साथ नैतिक और कानूनी बचावों (जिन्हें दैवीय मंजूरी भी हासिल थी) के ज़रिए इस व्यवस्था का टिका रहना। उनका मानना था कि वर्ण व्यवस्था—जिसे वर्ग व्यवस्था भी कहा जाता है—आधुनिक हिंदू सभ्यता की नींव थी और समाज की तमाम बुराइयों के लिए यही वर्ग-विभाजन की व्यवस्था जिम्मेदार थी।

उन्होंने राजनीतिक प्रक्रियाओं में हिस्सा लिया। उन्होंने लोगों से वंशानुगत सत्ता को नकारने और अपने स्वतंत्र निर्णय लेने का आग्रह किया। यह किसी भी लोकतांत्रिक सरकार की आधारशिला है। हर व्यक्ति को यह मानना चाहिए कि वे लोकतंत्र में योगदान देने वाले सदस्य हैं। नागरिकता अधिकारों का एक समूह है, जैसे (1) व्यक्तिगत स्वतंत्रता, (2) व्यक्तिगत सुरक्षा, (3) निजी संपत्ति रखने का अधिकार, (4) कानून के समक्ष समानता, (5) अंतरात्मा की स्वतंत्रता, (6) राय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, (7) सभा करने का अधिकार, (8) देश की सरकार में प्रतिनिधित्व का अधिकार और (9) राज्य के अधीन पद धारण करने का अधिकार। वे 1920 के दशक की शुरुआत में भारतीय समाज और राजनीति में सामने आए। भारतीयों के सबसे निचले वर्ग—अछूतों—की स्थिति सुधारने के मकसद से शुरू की गई। सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक पहलों में वे हमेशा सबसे आगे रहे। बाबासाहेब ने भारत के अछूतों को सामाजिक न्याय पाने के लिए राजनीतिक तरीकों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित किया। डॉ. अंबेडकर ने अर्थशास्त्र पर तीन एकेडमिक किताबें लिखीं:

1. ईस्ट इंडिया कंपनी फाइनेंस एंड एडमिनिस्ट्रेशन
2. द डेवलपमेंट ऑफ़ ब्रिटिश इंडियाज़ प्रोविंशियल फाइनेंस
3. द रुपीज़ इश्यू: इट्स हिस्ट्री एंड इट्स सोलुसन

पहली दो किताबें पब्लिक फाइनेंस में उनके योगदान को दिखाती हैं: पहली किताब में 1792 से 1858 तक ईस्ट इंडिया कंपनी के फाइनेंस का आकलन किया गया था। जबकि दूसरी किताब में 1833 से 1921 तक ब्रिटिश भारत में केंद्र-राज्य वित्तीय संबंधों के विकास की जांच की गई थी। अर्थशास्त्र पर उनकी बेहतरीन रचना, तीसरी किताब, मॉनेटरी इकोनॉमिक्स के विषय में एक अहम काम है। डॉ. बी. आर. अंबेडकर दुनिया भर में एक जाने-माने व्यक्ति थे। जिन्हें कानून और संविधान दोनों की गहरी समझ थी। भारतीय कानून के विकास में उनके योगदान के लिए उन्हें जाना जाता है। उन्होंने पहले के सभी संविधानों के बारे में विशेषज्ञता हासिल की और उस जानकारी का इस्तेमाल भारतीय संविधान को तैयार करने में किया। जिसे आज आधुनिक देशों के लिए एक आदर्श संविधान माना जाता है। उनके संवैधानिक उपाय नस्ल, भाषा और भूगोल के आधार पर होने वाले भेदभाव के साथ-साथ उन कई सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का भी समाधान करते हैं। जिनका ज़िक्र उन्होंने अपने भाषणों में किया था, जैसे कि लिंग, जाति, वर्ग और त्वचा के रंग के आधार पर भेदभाव देखा गया।

इसने गैर-संस्थागत सामाजिक कार्य के विकास को बहुत तेज़ी दी। एक समाज-सेवक और विचारक के तौर पर डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने समाज के सबसे वंचित और हाशिए पर रहने वाले लोगों पर अपने प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए अध्ययन किए। रिसर्च के अनुसार, अंबेडकर भारतीय समाज की राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों से वाकिफ थे। उन्होंने भारतीय समाज में बदलाव लाने के लिए कई रणनीतियाँ अपनाईं। उन्होंने अलग-अलग रणनीतियों का इस्तेमाल किया, लेकिन उनका अंतिम लक्ष्य कभी नहीं बदला। उनका मानना था कि अहिंसक तरीकों से सामाजिक बदलाव लाया जा सकता है।

अंबेडकर का मानना था कि छुआछूत गलत है और उन्होंने हिंदू समाज में इसका कड़ा विरोध किया। शुरू में सिर्फ तीन जातियां थीं: ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। उनका कहना है कि ब्राह्मणों और शूद्र राजाओं के बीच आपसी झगड़े से शूद्रों का उदय हुआ। धीरे-धीरे समाज में ब्राह्मणवाद का दबदबा बढ़ा और उनके बनाए नियमों को मानना ज़रूरी समझा जाने लगा। जो लोग इन नियमों को नहीं मानते थे, उन्हें बुरा माना जाता था। उन्होंने इसे साबित करने के लिए कई ऐतिहासिक उदाहरण दिए। उन्होंने यह साफ़ करने की कोशिश की कि इसके पीछे कोई व्यापारिक, सामाजिक या तार्किक आधार नहीं है। इसलिए उन्होंने इस व्यवस्था का कड़ा विरोध किया।

भारतीय गाँवों की पारंपरिक अवधारणा

डॉ. बी.आर. अंबेडकर का मानना था कि गाँव दमनकारी और गरीब भारत की पहचान हैं। वे पंचायतों के खिलाफ थे क्योंकि वे हिंदू जाति व्यवस्था की ताकत को बनाए रखने वाली थीं। इसके अलावा, उनका मानना था कि भारतीय गाँव जाति पर आधारित थे। उनके असरदार स्व-शासन वाली संस्थाओं के रूप में विकसित होने की संभावना बहुत कम थी। हिंदू कोड बिल के ज़रिए उनका मकसद महिलाओं को पुरुषों के बराबर संपत्ति का अधिकार देकर उन्हें सशक्त बनाना था। ताकि सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा मिल सके। उनका मानना था कि भारत में दलित संगठित सामूहिक कार्यों, विरोध-प्रदर्शन और शिक्षा के मेल से ही आज़ादी पा सकते थे।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर की रचनाओं से जाति-व्यवस्था की उनकी आलोचना और सामाजिक-आर्थिक सुधारों के बारे में उनके विचारों की बुनियादी जानकारी मिल सकती है। *एनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट* (1936) में अंबेडकर जाति-व्यवस्था की कड़ी आलोचना करते हुए कहते हैं कि यह ऊँच-नीच पर आधारित दमन और भेदभाव पर टिकी है। यह सिर्फ़ काम का बँटवारा नहीं, बल्कि काम करने वालों का बँटवारा है। वे बताते हैं कि कैसे जाति हाशिए पर पड़े समूहों को सामाजिक सम्मान, आर्थिक मौकों और शिक्षा से दूर रखती है, जिससे असमानता बनी रहती है। अंबेडकर का मानना है कि सामाजिक और आर्थिक असमानता राजनीतिक लोकतंत्र के साथ नहीं चल सकती। वे सामाजिक बदलाव, शिक्षा और अंतर-जातीय विवाहों के ज़रिए जाति-व्यवस्था को पूरी तरह खत्म करने की वकालत करते हैं (अंबेडकर, 1936)।

अंबेडकर ने अपनी किताब *द प्रॉब्लम ऑफ़ द रुपया: इट्स ओरिजिन एंड इट्स सॉल्यूशन* (1923) में आर्थिक मुद्दों पर चर्चा की है। इसमें उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि कैसे जाति-आधारित शोषण गरीबी और पिछड़ेपन को और बढ़ाता है, खासकर ग्रामीण इलाकों में इसको स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। उन्होंने इस बात की आलोचना की है कि कैसे धन और ज़मीन ताकतवर जातियों के हाथों में सिमटकर रह गए हैं, जिससे हाशिए पर रहने वाले लोगों को आर्थिक ताकत नहीं मिल पाती है। हाशिए पर रहने वाले लोगों के अधिकारों की रक्षा करने वाले संवैधानिक ढाँचे के लिए अंबेडकर का प्रस्ताव *स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज* (1947) में बताया गया है। सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए, वे ज़मीन के बंटवारे, शिक्षा तक पहुँच और सकारात्मक कार्रवाई (अफ़र्मेटिव एक्शन) की पहल में सरकार की भागीदारी का समर्थन करते हैं (अंबेडकर, 1947)।

जानकारों ने जाति और ग्रामीण विकास पर अंबेडकर के विचारों का गहराई से अध्ययन किया है। जैफ़रेलॉट (2005) ने एक समाज सुधारक के तौर पर अंबेडकर की भूमिका को उजागर किया है, जिन्होंने संवैधानिक और कानूनी तरीकों से जाति व्यवस्था को खत्म करने के लिए काम किया। जैफ़रेलॉट के अनुसार, अंबेडकर का राजनीतिक प्रतिनिधित्व और शिक्षा पर ज़ोर देने का मकसद वंचित समूहों को जाति-आधारित व्यवस्थाओं का विरोध करने में सक्षम बनाना था। इसी तरह, ओमवेड्ट (1994) ने अंबेडकर के आर्थिक सिद्धांतों की जांच की है, खासकर ग्रामीण पुनर्निर्माण के अहम तत्वों के तौर पर औद्योगीकरण और भूमि सुधारों के उनके समर्थन की। ओमवेड्ट के अनुसार, अंबेडकर का लक्ष्य सिर्फ़ समाज सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि वे एक ऐसा समावेशी आर्थिक ढाँचा बनाना चाहते थे जिससे ग्रामीण इलाकों में रहने वाले गरीब लोगों को मदद मिल सके।

अंबेडकर ने देखा कि जाति, खासकर ग्रामीण भारत में, एक सामाजिक पदानुक्रम और आर्थिक बाधा दोनों थी, जो असमानता को बनाए रखती थी। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था ने हाशिए पर रहने वाले लोगों को उत्पादक संसाधनों तक पहुँच से वंचित रखा, जबकि ज़मीन और आय को प्रभावशाली जातियों के हाथों में केंद्रित कर दिया। दलितों को अक्सर ग्रामीण इलाकों में कम वेतन वाले और शोषणकारी कामों, जैसे कि मैला ढोने और खेतिहर मज़दूरी, में धकेल दिया जाता था, जहाँ

उनके आगे बढ़ने के मौके बहुत कम होते थे। छुआछूत जैसी सामाजिक प्रथाओं ने, जो दलितों को पानी, ज़मीन और शिक्षा जैसे आम संसाधनों के इस्तेमाल से रोकती थीं, इस आर्थिक शोषण को और बढ़ावा दिया (थोराट और न्यूमैन, 2010)।

अस्पृश्यता: ग्रामीण समाज की सबसे बड़ी चुनौती

भारत लौटने के बाद, अंबेडकर ने अपना जीवन शोषित और हाशिए पर पड़े लोगों के अधिकारों के लिए लड़ने में लगा दिया। शोषितों की आवाज़ उठाने के लिए, उन्होंने 'मूकनायक' और 'बहिष्कृत भारत' जैसे प्रकाशन और 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' जैसे संगठन शुरू किए। उन्होंने दलित छात्रों के लिए संगठन और स्कॉलरशिप की शुरुआत की क्योंकि उनका मानना था कि शिक्षा बदलाव लाने वाला एक हथियार हो सकती है; उन्होंने उन्हें "*शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित हो जाओ*" का मंत्र दिया।

अंबेडकर निचली जातियों को 'धरती के मूल निवासी' (sons of the soil) होने का गौरवशाली इतिहास देना चाहते थे, ताकि वे जाति-आधारित पहचान से अलग एक नई पहचान बना सकें, अपना आत्म-सम्मान वापस पा सकें और आपसी बंटवारे को खत्म कर सकें। अपनी किताब '*द अनटचेबल्स: हू वर दे एंड व्हाई दे बिकेम अनटचेबल्स?*' (1948) में अंबेडकर उन पश्चिमी लेखकों को चुनौती देते हैं जो जाति व्यवस्था को समझाने के लिए नस्लीय विशेषताओं का सहारा लेते हैं। उनकी व्याख्या काफी बारीकी भरी और गहरी है। उन्होंने उन सभी मूल निवासी जनजातियों का जिक्र किया है जिनकी बात उठाई गई है।

अंबेडकर का जीवन 'अछूत' के तौर पर उनके कड़वे और अपमानजनक निजी अनुभवों से आकार लेने और प्रभावित होने वाला था। इसी वजह से उन्होंने छुआछूत की जड़ें खोजने की कोशिश की। सामाजिक बुराईयों की जड़ों को जानने की उनकी यह खोज उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है, जैसे "*द अनटचेबल्स*", "*द शूद्राज़: हू वर दे एंड हाउ दे केम टू बी द फोर्थ वर्ण ऑफ़ इंडो-आर्यन सोसाइटी*", "*कास्ट इन इंडिया: इट्स मैकेनिज्म, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट*", "*हिंदू सोशल ऑर्डर: इट्स एसेंशियल प्रिंसिपल्स*", "*फिलॉसफी ऑफ़ हिंदूइज्म*" और "*एनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट*"।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर का कहना है कि बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद—जो ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म का पुराना नाम है—के बीच टकराव की वजह से ही लगभग 400 ईस्वी में छुआछूत की प्रथा शुरू हुई। आज़ादी के बाद भारत में छुआछूत को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया है, दलितों को काफी ताकत मिली है और भेदभाव को खत्म करने की कोशिशें जारी हैं। मानवविज्ञानी सारा पिंटो का कहना है कि भारत में जो लोग "मौत, शवों, मांस और शरीर के तरल पदार्थों" से जुड़े काम करते हैं, उन्हें अछूत माना जाता है। ऊंची जातियों ने छुआछूत के बहाने काम की जगहों पर और वंश के आधार पर दलितों के साथ भेदभाव किया है। अलग-अलग जगहों और समय पर जातिगत भेदभाव के मामले सामने आते रहे हैं। हमारे समाज में अभी भी जाति और जन्म के आधार पर श्रेष्ठता की भावना मौजूद है। छुआछूत एक ऐसी प्रथा है जिसका सामना हमें रोज़ाना करना पड़ता है, खासकर देश के ग्रामीण और अर्ध-शहरी इलाकों में। इसके अलावा, बड़े शहरों में भी हाथ से मैला ढोने (मैनुअल स्कैवेजिंग) की क्रूर प्रथा अभी भी जारी है।

समानता, आज़ादी के महत्व और उसकी असलियत को बढ़ाती है। समानता के सिद्धांत का इस्तेमाल समाज के किसी खास हिस्से को बेहिजाब दौलत, असर या रुतबा हासिल करने से रोकने के लिए किया जाता है। इसका एकमात्र मकसद शोषण को सीमित करना है ताकि समाज के दूसरे वर्गों को भी इन फायदों का उचित हिस्सा मिल सके। साथ ही, यह सामाजिक सेवाओं के दायरे को बढ़ाने की कोशिश करता है ताकि बाकी समुदाय किसी मुखर और छोटे अल्पसंख्यक वर्ग के कारण गरीब न हो जाए। यह स्पष्ट है कि आज़ादी और समानता मानवाधिकार हैं जो बिल्कुल अलग-अलग स्रोतों से नहीं आते हैं।

इसके अलावा, शरीर के बारे में बौद्ध नज़रिया भी काफ़ी अहम है, खासकर छुआछूत के मामले में। लोगों, समाज और ईश्वर के बारे में ब्राह्मणवादी नज़रिए को बौद्धों द्वारा नकारा जाना इसकी एक वजह है। बौद्ध धर्म एक अलग धर्म है। दुनिया को अक्सर शरीर के रूप में दिखाया गया है। क्योंकि दुनिया शरीर के भीतर ही बनती और खत्म होती है, इसलिए बुद्ध का मानना था कि शरीर ही दुनिया है (लैंग 2003: 24)। भारत में जब बौद्ध धर्म की 2500वीं वर्षगांठ मनाई जा रही थी, तभी धर्म-परिवर्तन के आंदोलन भी शुरू हुए। उस समय बहुत से लोगों ने ईसाई और इस्लाम धर्म अपना लिया। महाराष्ट्र की अछूत मानी जाने

वाली महार जाति का धर्म-परिवर्तन, बौद्ध धर्म में लोगों की बढ़ती बौद्धिक रुचि के समय के आस-पास ही हुआ; लेकिन यह मुख्य रूप से बीसवीं सदी के उनके नेता डॉ. बी.आर. अंबेडकर के ज़रिए ही इस पुनरुत्थान से जुड़ा। अंबेडकर का अपना जीवन उन कुछ कारणों को उजागर करता है जिनकी वजह से महार समुदाय में आगे बढ़ने की मुहिम शुरू हुई। गांव के सेवक के तौर पर महार समुदाय की जो पारंपरिक भूमिका थी, उसे उनके पिता और दादा पहले ही छोड़ चुके थे।

डॉ. अंबेडकर किराएदारों के शोषण के खिलाफ थे। वे एक वकील थे। उनका तर्क था कि ज़मींदारी खत्म करने से पैदावार बढ़ेगी। इसी वजह से, उन्होंने कोंकण क्षेत्र के कई जिलों में चल रही 'खोटी' व्यवस्था को खत्म करने का पुरजोर समर्थन किया। खोटी व्यवस्था के तहत, 'खोट' (ज़मीन के मालिक) किराएदारों के पूरे परिवार से बंधुआ मज़दूरों की तरह काम करवाते थे। खोट अपने किराएदारों से घरेलू मुर्गियों के लिए कटहल भी ले लेते थे। यह मामला सिर्फ़ आर्थिक नहीं था। खोट किसानों और उनके जीवनसाथी को खराब कपड़े पहनने पर मजबूर करते थे। सी.के. बोले और डॉ. अंबेडकर ने कानून के ज़रिए इस व्यवस्था को खत्म करने के लिए कड़ी कोशिश की। साथ ही, उन्होंने इसे लेकर कानून पास कराने की भी कोशिश की। कई ब्राह्मण समाचार माध्यम डॉ. अंबेडकर के इन कदमों के खिलाफ थे।

प्रेस ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया (PTI) की रिपोर्ट के अनुसार, 3 जनवरी 2014 को कर्नाटक में पुलिस ने चाय की दुकान चलाने वाले चार लोगों को गिरफ़्तार किया था। उन पर आरोप था कि वे सवर्ण हिंदुओं और SC/ST समुदाय के लोगों को अलग-अलग कपों में चाय परोसकर छुआछूत का पालन कर रहे थे। यह घटना दिखाती है कि हिंदू समाज में यह भयानक प्रथा कितनी गहराई तक समाई हुई है; इसका सबूत यह है कि आज़ादी के 67 साल बाद भी यह किसी न किसी रूप में मौजूद है।

गाँव और आर्थिक संरचना

आज़ादी के बाद के शुरुआती कुछ दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से खेती पर आधारित थी। 20वीं सदी के शुरुआती दौर तक, संपत्ति ही राजस्व का मुख्य स्रोत थी और ज़मीन के मालिकाना हक से सामाजिक असमानता पैदा होती थी। गाँव के समाज में जाति व्यवस्था और सामाजिक ढांचा भी ज़मीन के मालिकाना हक और ज़मीन की मात्रा से प्रभावित होते थे। जाति व्यवस्था ज़मीन की मात्रा पर आधारित थी; निचली जातियों के पास बहुत कम ज़मीन होती थी। उन्होंने देखा कि ग्रामीण किसान सामाजिक समानता का विरोध करते हैं। ऊंची जातियों के हिंदू अपनी पुरानी परंपराओं को छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

शुरुआत में, डॉ. अंबेडकर का मानना था कि भारत की आर्थिक तरक्की के लिए खेती सबसे ज़रूरी उद्योग है। आधुनिक भारत के इतिहास में पहली बार, गांधीजी ने खेती को एक बिज़नेस के तौर पर अपनाने को बढ़ावा दिया। डॉ. अंबेडकर का तर्क था कि भारत की राष्ट्रीय आय बढ़ाने के लिए खेती से होने वाली आय को बढ़ाना ज़रूरी है। उन्होंने बाद के समय में तेज़ी से औद्योगीकरण की वकालत की। उन्होंने व्यवस्था को गहराई से समझा। उन्होंने पढ़े-लिखे लोगों को अपनी बात बताई। इसके अलावा, उन्होंने 'महार वतन', गाँव की आत्मनिर्भरता और खेती पर आधारित अर्थव्यवस्था को खत्म करने का समर्थन किया। उन्होंने इन चीज़ों के लिए ग्रामीण समाज की रूढ़िवादिता को ज़िम्मेदार ठहराया।

अपनी अहम किताब, 'द प्रॉब्लम ऑफ़ द रुपया: इट्स ओरिजिन एंड इट्स सॉल्यूशन' (1923) में, अंबेडकर ने औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत की मुद्रा नीतियों के आर्थिक असर और उनके ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया। उनके सुझाव दूरदर्शी थे और उन्होंने रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया की रूपरेखा तैयार करने में अहम भूमिका निभाई (अंबेडकर, 1923, पृष्ठ 141-172)। उनका नज़रिया इरविंग फिशर और नट विकसेल के मौद्रिक सिद्धांतों से मेल खाता है, जिन्होंने आर्थिक विकास में मौद्रिक स्थिरता की ज़रूरत पर ज़ोर दिया था। अपनी डॉक्टरेट थीसिस, 'द इवोल्यूशन ऑफ़ प्रोविशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' (1925) में, अंबेडकर ने क्षेत्रीय आर्थिक समानता हासिल करने के लिए वित्तीय शक्तियों के विकेंद्रीकरण की वकालत की। उन्होंने दिखाया कि केंद्रीयकृत राजस्व संग्रह से क्षेत्रीय असमानताएँ बढ़ीं और प्रांतों को स्थानीय विकास की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ज़रूरी स्वायत्तता से वंचित होना पड़ा (अंबेडकर, 1925, पृष्ठ 204-219)। भारत में खोती और ज़मींदारी व्यवस्थाओं को खत्म करने में अंबेडकर की बड़ी भूमिका थी। ये ज़मीन से जुड़ी अलग-अलग तरह की व्यवस्थाएँ थीं। इन व्यवस्थाओं में ज़मींदारों का दबदबा होता था और अक्सर मज़दूरों व किसानों का शोषण किया जाता था।

डॉ. अंबेडकर ने बताया कि रत्नागिरी में ज़मीन तीन हिस्सों में बंटी हुई थी और कुल 20 एकड़ (गुंटा) थी, पिंपले सौदागर में एक से दो एकड़ ज़मीन थी, और मुंबई प्रेसीडेंसी में ज़मीन की औसत जोत का आकार 25.1 एकड़ था। इस बात पर चर्चा हुई

कि भारत में ज़मीन के बंटवारे का देश की कम कृषि उत्पादकता में क्या योगदान था। अंबेडकर ने कहा कि ज़मीन के बंटवारे का मुख्य कारण विरासत में मिले अधिकार नहीं, बल्कि आबादी का दबाव था। ज़मीन का बंटवारा इसलिए हुआ क्योंकि गुज़ारे के लिए कोई और विकल्प नहीं था। इसके अलावा, खेती ही एकमात्र ऐसा तरीका है जो कृषि से ज़्यादा फ़ायदेमंद होगा। जब 1940 के दशक के आखिर में अंबेडकर भारत के पहले कानून मंत्री बने, तो उन्होंने इन व्यवस्थाओं को खत्म करने के लिए काम शुरू किया। कई बातचीत और बहसों के बाद, उन्होंने इन व्यवस्थाओं को खत्म करने के मकसद से भारतीय संसद में कई प्रस्ताव पेश किए, और आखिरकार ये बिल पास हो गए।

उन्होंने अपनी लेखनी और भाषणों में भारतीय गाँवों के शोषणकारी पहलुओं की आलोचना करते हुए कहा कि "गाँव स्थानीयता का केंद्र, अज्ञानता, संकीर्ण सोच और सांप्रदायिकता का अड्डा हैं।" स्वतंत्र ग्राम गणराज्यों की आदर्शवादी गांधीवादी धारणाओं के विपरीत, अंबेडकर ने राज्य के नेतृत्व में कृषि के आधुनिकीकरण, ज़मींदारों जैसे बिचौलियों को हटाने और भूमिहीन मज़दूरों को ज़मीन सौंपने का समर्थन किया। उनका दृष्टिकोण न्याय, मानवीय गरिमा और आर्थिक तर्कसंगतता के मूल्यों के अधिक अनुरूप था।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर की कृषि सुधार रणनीति, संरचनात्मक बदलाव और आर्थिक निष्पक्षता के विचारों पर मजबूती से आधारित थी। उन्होंने ग्रामीण भारत में असमानता और जाति-आधारित वर्चस्व को बनाए रखने वाली पुरानी सामंती व्यवस्था को खत्म करने के लिए कृषि संपत्ति पर राज्य के स्वामित्व का साहसिक सुझाव दिया; वे समझते थे कि ज़मीन का मालिकाना हक ही सामाजिक और आर्थिक शक्ति का आधार है। शोषणकारी ज़मींदारी व्यवस्था को खत्म करने के अलावा, उनका तर्क था कि इस तरह के स्वामित्व से राज्य को आम भलाई के लिए संसाधनों के बंटवारे की तार्किक योजना बनाने में मदद मिलेगी। बड़े पैमाने पर उत्पादन के फायदों और कम उत्पादन लागत का लाभ उठाने तथा छोटे और सीमांत किसानों को मोल-भाव करने की अधिक ताकत देने के लिए, अंबेडकर ने सामूहिक खेती और सहकारी मॉडल को ज़ोरदार ढंग से बढ़ावा दिया।

निष्कर्ष

समाज सुधारक और विचारक डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने समाज के सबसे वंचित और हाशिए पर रहने वाले लोगों पर अपने प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए अध्ययन किया। रिसर्च के अनुसार, अंबेडकर भारतीय समाज की राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों से अच्छी तरह वाकिफ थे। उन्होंने भारतीय समाज में बदलाव लाने के लिए कई तरीके अपनाए। उन्होंने अलग-अलग रणनीतियों का इस्तेमाल किया, लेकिन उनका अंतिम लक्ष्य कभी नहीं बदला। वे सामाजिक बदलाव लाने का एक जरिया थे। उन्हें समाज के कमजोर लोगों की स्थिति की चिंता थी।

राष्ट्रवादी अक्सर भारतीय गाँव की जो रोमांटिक तस्वीर पेश करते थे, वह अंबेडकर की सोच से बिल्कुल अलग थी। गांधी का मानना था कि गाँव ही भारत की असली पहचान है, जबकि अंबेडकर ने इसे "अज्ञानता का अड्डा" और "जातिवाद का गंदा गड्ढा" कहा। उनके लिए, गाँव एक शांतिपूर्ण समुदाय नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था थोपने और लोगों को अलग-थलग रखने का ज़रिया था, खासकर अछूतों के खिलाफ़।

Author's Declaration & Publication Consent:

The author(s) declare that the manuscript is original, accurate to the best of their knowledge, and does not knowingly infringe any copyright, privacy, or other third-party rights. All necessary permissions, ethical approvals, disclosures, and consents, where applicable, have been obtained. The author(s) accept responsibility for the content, data, interpretations, conclusions, authorship, and compliance with applicable research and publication ethics. Any conflicts of interest and funding sources have been appropriately disclosed. The author(s) authorize the Journal and Publisher to publish and disseminate the article under the Creative Commons AttributionNoncommercial 4.0 International License (CC BY-NC 4.0).

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आंबेडकर, भीमराव रामजी। जाति का उन्मूलन (Annihilation of Caste). नवायन, 2014।
2. आंबेडकर, भीमराव रामजी। शूद्र कौन थे? (Who Were the Shudras?) ठैकर एंड कंपनी, 1946।
3. आंबेडकर, भीमराव रामजी। अछूत: वे कौन थे और अछूत कैसे बने? (The Untouchables). अमृत बुक कंपनी, 1948।

4. आंबेडकर, भीमराव रामजी। पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन (Pakistan or the Partition of India). ठैकर एंड कंपनी, 1945।
5. आंबेडकर, भीमराव रामजी। स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज़ (States and Minorities). डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर: राइटिंग्स एंड स्पीचेज़, खंड-1, महाराष्ट्र शासन, 1979।
6. आंबेडकर, भीमराव रामजी। व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टू द अनटचेबल्स. ठैकर एंड कंपनी, 1945।
7. आंबेडकर, भीमराव रामजी। स्मॉल होलिंग्स इन इंडिया एंड देयर रेमेडीज़. गवर्नमेंट ऑफ बॉम्बे, 1918।
8. आंबेडकर, भीमराव रामजी। द इवोल्यूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया. पी. एस. किंग एंड सन, 1925।
9. आंबेडकर, भीमराव रामजी। बुद्ध और उनका धम्म (The Buddha and His Dhamma). सिद्धार्थ कॉलेज पब्लिकेशन्स, 1957।
10. आंबेडकर, भीमराव रामजी। रानाडे, गांधी और जिन्ना. ठैकर एंड कंपनी, 1943।
11. मून, वसंत (संपा.)। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर: राइटिंग्स एंड स्पीचेज़. खंड 1-17, महाराष्ट्र शासन।
12. रोड्रिग्स, वलेरियन (संपा.)। द एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ बी. आर. आंबेडकर. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002।
13. ओमवेट, गेल। आंबेडकर: टुवर्ड्स एन एनलाइटेंड इंडिया. पेंगुइन, 2004।
14. ओमवेट, गेल। दलित्स एंड द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन. सेज, 1994।
15. जैफरलो, क्रिस्टोफ़। डॉ. आंबेडकर एंड अनटचेबिलिटी. परमानेंट ब्लैक, 2005।
16. जैफरलो, क्रिस्टोफ़। इंडियाज़ साइलेंट रिवोल्यूशन. परमानेंट ब्लैक, 2003।
17. कीर, धनंजय। डॉ. आंबेडकर: लाइफ़ एंड मिशन. पॉपुलर प्रकाशन, 1971।
18. ज़ेलियट, एलेनॉर। फ़ॉर्म अनटचेबल टू दलित. मनोहर पब्लिशर्स, 1992।
19. ज़ेलियट, एलेनॉर। आंबेडकर्स वर्ल्ड. नवायन, 2013।
20. गुरु, गोपाल। ह्यूमिलिएशन: क्लेम्स एंड कॉन्टेक्ट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009।
21. गुरु, गोपाल एवं सुंदर सरुक्कई। द क्रेकड मिस्टर. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012।
22. रेगे, शर्मिला। अगेन्स्ट द मैडनेस ऑफ मनु. नवायन, 2013।
23. रेगे, शर्मिला। राइटिंग कास्ट/राइटिंग जेंडर. जुबान, 2006।
24. श्रीनिवास, एम. एन. सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. ओरिएंट ब्लैकस्वान, 1966।
25. बेटेइल, आंद्रे। कास्ट, क्लास एंड पावर. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965।
26. ड्यूमोंट, लुई। होमो हायरार्किकस. यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1980।
27. शाह, घनश्याम। सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया. सेज, 2004।
28. शाह, घनश्याम। दलित आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स. सेज, 2001।
29. थोराट, सुखदेव एवं कैथरीन न्यूमैन (संपा.)। ब्लॉकड बाय कास्ट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010।
30. पाई, सुधा। दलित असर्शन एंड द अनफिनिशड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन. सेज, 2002।

Publisher's Note: The statements, opinions, findings, interpretations, and conclusions expressed in this article are solely those of the author(s) and do not necessarily reflect the views of the Journal, its Editors, Editorial Board, reviewers, or Publisher. Responsibility for the accuracy, integrity, and scholarly content of the article rests primarily with the author(s). The Journal, Editors, and Publisher exercise reasonable editorial and ethical oversight in accordance with the Journal's established policies. However, to the extent permitted by applicable law, they shall not be responsible for any consequences arising from the use, application, or interpretation of the information contained in the article. The Publisher remains neutral with regard to jurisdictional claims in published maps and institutional affiliations.